International Journal of Information Movement Vol.I Issue VI (OCtober 2016)
Website: ijim.in ISSN: 2456-0553 (online) Pages 27-31

सामाजिक–चेतना – अर्थ, स्वरूप और परिभाषा

डॉ. नीलम

1.1 सामाजिक–चेतना : अर्थ, स्वरूप और परिभाषा

समाज का सीधा–सा अभिप्रायः मनुष्यों के समूहों से माना जाता है । मानव पृथक–पृथक रहकर अपने अस्तित्व को बनाये रखने के उसका विकास करने से सक्षम नही हो पाता । इसलिए उसे अपने ईद–गिर्द के मनुष्यों से सम्बन्ध स्थापित करने पड़ते हैं । इन्हीं सम्बन्धों को 'समाज' का नाम दिया जाता है । इस समाज सम्बन्ध के विशेषण से ही सामाजिक शब्द बना है, जिसका भाव है– समाज से सम्बन्धित । अतः समाज व्यक्तियों का दल न होकर सामाजिक सम्बन्धों का गहरा जाल है । बृहद् हिन्दी कोश में समाज शब्द का अर्थ मिलना, एकत्र होना, समूह, संघ, दल, सभा, समिति आदि से लिया गया ।[1] जो मूलतः एक ही अर्थ प्रदान करते हैं। इस प्रकार बैवस्टर इन्साइक्लोपीडिया अनब्राइज्ड ने समाज का तात्पर्य अकेले रहने की बजाय समुदायों में दूसरों के साथ मिलकर रहने से लिया गया है ।[2] दा आक्सफोर्ड हिन्दी अंग्रेजी डिक्षनरी में भी समाज षब्द का तात्पर्य समाज (Social) और सभा (Association) लिया गया है ।[3]

डॉ. रत्नाकार पाण्डेय हिन्दी साहित्य : सामाजिक–चेतना में समाज का अर्थ समूह, संघ, गिरोह, दल, एक स्थान पर विषिष्ट उद्देष्य की पूर्ति के लिए एकत्र व्यक्ति आदि से लेते हैं ।[4]

शब्दकोषों और इन्साकलोपीडिया के अतिरिक्त पाष्चात्य विद्वानों ने भी अपने समाज सम्बन्धों विचारों को प्रस्तुत किया है – सत्यकेतु विद्या अंलकार 'समाज शास्त्र के सिद्वान्त' में गिडिक्स के समाज सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ''समाज आपसी सम्बन्धों का वह समूह है, जिसके कारण सभी मनुष्यों का परस्पर जुड़ाव रहता है'' ।[5] इस प्रकार जगदीष सहाय 'समाज–दर्षन' की भूमिका में 'राइट' के समाज सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ''समाज व्यक्तियों का समूह न होकर उनके पारस्परिक सम्बन्धों का संगठित रूप है ।''[6]

इसी प्रकार जहाँ शब्दकोषो और इन्साइक्लोपीडिया में समाज से तात्पर्य विषेष समूह से लिया गया है, वही पाष्चात्य विद्वानों ने इसे सम्बन्धों का नाम दिया है । सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य सामाजिक इकाईयों से बंटा हुआ है । प्रारम्भ से ही वह अपना भरण–पोषण करने के लिए समूहों में बंटा हुआ था । सभ्यता के विकास के साथ–साथ उसके विभिन्न समूहों ने एकत्र होकर अपना एक सअलग समाज बनाकर रहना सीख लिया । जिससे उसका एक–दूसरे समूहों के प्रति भय खत्म होता गया । अब उसे जीवन सम्बन्धी आम वस्तुएं आसानी से उपलब्ध होने लगी । उसकी आदिम प्रवृति धीरे–धीरे खत्म होती गयी और उसने समाज के बारे में सोचना शुरू कर दिया । वह हपनी आने वाली पीढ़ियों की सुरक्षा हेतू समाज को नियमों में बांधने लगा ।

अब मनुष्य अपने को प्राणी समाज में सर्वश्रेष्ठ सिद्व करने की होड़ में लग गया । उसने मानवीय समाज को सभ्य और सुसंस्कृत बनाना शुरू कर दिया । इस प्रकार इन नियमों और संस्कारों को ग्रहण करते हुए मानव द्वारा एक सुदृढ़ एवं प्रेरक समाज की स्थापना हुई, जो लम्बे समय से मनुष्य को प्रेरित करता चला आ रहा था । 'थ्यूरी आफ रवोल्यूवेशन' (विकास का सिद्वान्त) भी यही बताता है कि आदिमानव एकान्तवासी होने के कारण पाश्विक वृति वाला था, लेकिन शनैः जैसे–जैसे वह एक–दूसरे के संसर्ग में आता गया उससे उसकी पाश्विकता खत्म होती गई और आपसी प्रेम की भावना जागृत हुई । पारस्परिक मेल–जोल ने उसे समाजिक बना दिया । इस प्रकार एक–दूसरे से मिलकर बैठने वाली स्थिति समाज के रूप में परिणत हो गयी ।

1.2 'चेतना' : अर्थ ओर परिभाषा

'चेतना' मानव शरीर के सर्वश्रेष्ठ शीर्षस्थ भाग का सक्रिय हिस्सा है । मानव मस्तिष्क यदि चेतना से ओत–प्रोत है, तो ही व्यक्ति सामान्य मानव की श्रेणी में आता है । यदि उसके मस्तिष्क की चेतना का स्वरूप सामान्य से कम या अधिक है, तो क्रमषः असामान्य व्यक्ति की श्रेणी में आ जाता है जो विभिन्न अनुपातों में पागल विक्षिप्त या मनोरोगी कहलाता है । ये मानव चेतना का ही परिणाम है कि आज हम एक बृहद समाज में प्रेमपूर्वक रह रहे हैं । विष्व–बन्धुत्व और वसुधैव–कुटुम्बकम की हमारी जिज्ञासा हमें महामानव की श्रेणी में ला खड़ा करती है, जो एक अभूतपूर्व समाज का संचालन करती है ।

बृहद् हिन्दी कोष में चेतना में अभिप्रायः होष में आना, बुद्धि विवेक से काम लेना, सोचना, चैतन्य, होष आदि से लिया गया है ।[7] इसी प्रकार ऑक्सफोर्ड हिन्दी–इंग्लिष डिक्षनरी में ''चेतना का अर्थ'' Consciousness intelligence recatlection, चेतनता आदि से लिए गए हैं ।[8] संस्कृत में भी 'चेतना शब्द संज्ञा, बोध, समझ आदि के रूप में प्रयोग होता है ।[9] इसी प्रकार मानक हिन्दी कोष में भी ''चेतना को मन की शक्ति माना गया है, जो मानव को आन्तरिक व बाह्रा अनुभूतियों का ज्ञान कराती है ।[10]

उपर्युक्त परिभाषाओं से पता चलता है कि सभी एक ही विषिष्ट शक्ति (चेतना) के द्योतक हैं, जो मनुष्य के सर्वांगीण विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य करती है । चेतना हमारे मन को सषक्त कर उसकी सूक्ष्म भावनाओं, विचारों तथा बाह्य–जगत की विषय–वस्तुओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है । चेतना अतीत के स्मरण से हमारे भविष्य का सही और सकारात्मक निर्माण करती है । मनुष्य को आदिम–युग से वैज्ञानिक युगत तक ले आना चेतना का ही कार्य है । चेतना ही मनुष्य को अंधकार रूपी दलदल से निकालकर ज्ञान रूपी प्रकाष प्रदान करती है । चेतना के बिना मनुष्य जड़बुद्धि बनकर रह जाता है और जड़बुद्धि पषुओं से भी बदतर होता है । उस प्रकार चेतना को हम निर्णायक शक्ति और विषिष्ट मानवीय गुण मानते हैं । ये उसी का परिणाम है कि वर्तमान युग–चेतना का युग कहलाता है ।

1.3 सामाजिक चेतना

किसी भी समाज को विकसित करने के लिए उसमें चेतना का जागृति का होना अनिवार्य माना गया है । हमारी सामाजिक व्यवस्था वर्ण प्रधान है । अनादिकाल से भारतीय

समाज जाति के आधार पर बंटा हुआ है, लेकिन इस व्यवस्था के पीछे कर्म का भी प्राधान्य रहा है । वर्ग विषेष को न केवल जाति के बल्कि कर्म के आधार पर भी विभूषित किया गया है । यथा ब्राह्माण (विद्या पढ़ना और पढ़ाना) क्षत्रिय (रक्षा सम्बन्धी) वैष्य (वाणिज्य) और शूद्र (सफाई व्यवस्था) । वैदिक रीति में तो ब्राह्मण को भगवान का मुख, वैष्य को पेट, क्षत्रिय हो जंघा और शूद्र को पांव माना गया है । लेकिन शनैःषनैः ज्यों–ज्यों समाज में चेतना आई, ये दृष्टिकोण बदलता गया और धर्म–कर्म या जाति के आधार पर विभाजित समाज समानता की ओर बढ़ने लगा । जिसमें विज्ञान का बड़ा योगदान रहा है ।

मानव शरीर की सरंचना, मनुष्य का लहू कहीं से भी वर्ण व्यवस्था के आधार पर अलग–अलग नहीं हे । इसलिए इस विवेक शून्यता को दूर करने में बहुत–बहुत से सामाजिक आन्दोलनों का हाथ रहा है । राजाराम मोहनराय, दयानंद सरस्वती, गांधी जैसे अनेक समाज सुधारकों ने अपने–अपने समय के अनुकूल समाज में नव–चेतना का संचार किया जिसका प्रत्यक्ष आज का समाज है । आज अवर्ण और सवर्ण का प्रष्न उठाना स्वयं को संकट में डालना है । अन्तर्जातीय विवाह, सरकार द्वारा चलाई गई विभिन्न साक्षरता सम्बन्धी योजनाओं, रोजगार व आरक्षण सम्बन्धी नीतियों के द्वारा समाज में आए परिवर्तन से आज कोई भी अनभिज्ञ नही है ।

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय 'हिन्दी साहित्य' सामाजिक–चेतना में मानव समाज की ज्ञानात्मक वृति मानते हुए कहते हैं कि समाज पषुओं से भिन्न लोगों का समूह है, परन्तु जनता के आकस्मिक जमावड़े या समूह को समाज नही कहा जा सकता । उन एकत्रित लोगों का एक निष्चित उद्देष्य या लक्ष्य होता है, जिसके लिए वे मिलकर काम करते हैं । मनुष्य समाज विभिन्न धर्मों एवं भाषाओं में बंटा होने के कारण कई बार अद्योगति एवं पतन की अवस्था में आ जाता है । तब ऐसी प्रतिकूल परिस्थितियों में जो प्रति ज्योति बनकर समाज का मार्गदर्षन करती है, उसे सामाजिक चेतना का वाहक माना जाता है ।[11]

समाजिक चेतना विच्छिन्न न होकर बहते हुए जल की भांति लगातार विकसित होती चली जाती है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों से अपना सम्पर्क बनाती हुई अपने पथ पर बढ़ती जाती है । मानव समाज की सामाजिक समस्याओं, राजनीतिक उठापटक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक असमानताओं से सम्बन्धित नागरिक जीवन की समाजनमूलत विकास की ओर अग्रसर भावना ही सामाजिक चेतना कहलाती है ।[12] प्रो. प्रणय 'नागार्जुन की सामाजिक चेतना' में सर विलियम हेमिल्टन के चेतना सम्बन्धी विचारों को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि ''चेतना अपरिभाषेय है, उसे हम केवल अनुभव कर सकते हैं, बिना किसी उल्लंघन के दूसरों को बता नही सकते ।''[13] सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति शाष्वत, मांगलिक और सर्वग्राहय होने के कारण इसका स्वरूप विस्तृत एवं व्यापक बन गया है । मनुष्य के मन में सामाजिक चेतना का जागृत होना या चेतना का विकास वातावरण पर निर्भर करता है, क्योंकि व्यक्ति को नैतिक मूल्य एवं व्यवहारिक ज्ञान वातावरण के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार उसका वातावरण होगा वैसे ही आचार–व्यवहार का वह संचय कर पाएगा ।

इस प्रकार सामाजिक–चेतना ऐसा शाष्वत सत्य है, जो मनुष्य को पशुत्व के धरातल से उठाकर दिव्यत्व की ओर ले जाता है । यह चेतना मानव समुदाय की आत्मक एवं सतात्मक एकता का स्वरूप है । चेतना प्रत्येक समाज में पाई जाती है । किसी में निजी चेतना तो किसी में समूह चेतना । वस्तुतः दोनों चेतनाएं ही सामाजिक–चेतना के विकास में सहयोगी बन पड़ती हैं, क्योंकि किसी भी अच्छाई से प्रभावित होकर उलग–अलग मनुष्य उसको अपनाने का प्रयत्न करते हैं, जो चेतना के रूप में उनके अन्तस् में कार्य करती है । इस प्रकार ''यह अन्तस् की भावना सामाजिक चेतना को सुदृढ़ बनाती हुई निरन्तर विकसित होती चली जाती है ।[1]

समाज के सर्वांगीण विकास के लिए प्रत्येक मनुष्य के अन्तस् में सामाजिक–चेतना का होना आवष्यक माना गया है । समाज के सम्पूर्ण क्षेत्र में विकास और परस्पर समानता के भाव ही सामाजिक चेतना के स्वरूप को निर्धारित करते हैं ।

सामाजिक संघर्ष, शोषण, जातीय जागरण, मानव की पीड़ा की अभिव्यक्ति, उसकी विवाह सम्बन्धी समस्याएं, अमीर वर्ग व पूंजीपति वर्ग के प्रति घृणा भाव, उनके शोषण युक्त कार्य की निन्दा, धार्मिक आडम्बरों की निंदा पारस्परिक बन्धनों को तोड़ने का आक्रोष, झोपड़पट्टियों के प्रति आत्मीयता ओर महल अट्टलिकाओं के प्रति विरोध के भाव सामाजिक चेतना के मानदण्ड माने गए हैं ।

संदर्भ :

1 बृहदफ हिन्दीकोष, स. कालिका प्रसाद, राजबल्लभ सहाय, मुकुन्दीलाल श्री वास्तव, पृ. 120

2 Social-Living or disposed to live in companiship with others or in a community, rather than in isolation.

3 Webster's Encyclopaedia unabridge Grammoly, Page 1350 The Oxford Hindi English Dictionery, Edited by M.C. Gregor, Page 986

4 समाज–संप्र. (सं.) (1) समूह, संघ, गिरोह, दल (2) सभा 3. हाथी 4. एक ही स्थान पर रहने वाले अथवा एक ही प्रकार का व्यवसाय करने वाले वे लोग जो मिलकर अपना एक समूह बनाते हैं । समुदाय जैसे– षिक्षित समाज, ब्राह्मण समाज 5. वह संस्था जो बहुत से लोगों में एक साथ मिलकर किसी विषिष्ट उद्देष्य की पूर्ति के लिए स्थापित हो । सभा जैसे संगीत सभा, साहित्य सभी , हिन्दी साहित्य, सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डये, पृ. 154

5 गिडिक्स के अनुसार, समाज एक संगठन है, पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसा समुच्यय है, जिसके कारण उसके अन्तर्गत सभी व्यक्ति ऐ–दूसरे से सम्बन्ध रहते हैं, समाज शास्त्र सत्यकेतु विद्यालंकार, पृ. 29

6 समाज दर्षन की भूमिका, जगदीष सहाय श्री वास्तव, पृ. 25
Guests between the individuals of groups- wright

7 चेतना होष में आना, विवेक के काम लेना, सावधान होना, सोचना, विचारना (भला चेतना, आगम चेतना) चेतना–सी चैतन्य ज्ञान, होष, याद, बुद्धि, चेत, जीवन शक्ति जीवन । बृहद् कोष सं– कालिका प्रसाद, राज बल्लभ सहाय, मुकुन्दी लाल श्री वास्तव, पृ. 384

8 Consciousness, intelligence 2. recollection. The oxford Hindi, English Dict. R.S/ MC Gregor Page 328

9 संस्कृत में 'चेतना'शब्द, संज्ञा, बोध, स्मरण, बुद्धि और विवेक आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है । संस्कृत शब्दार्थ कोस्तुम, द्वारिका प्रसाद शर्मा, पृ. 439

[10] चेतना मन की वृति या शक्ति है, जिससे जीवन या प्राणी को आन्तरिक अनुभूतियों, भावों, विचारों और बाह्राय घटनाओं, तत्त्वों या बातों का अनुभव होता है । मानक हिन्दीकोष, सं. रामचन्द्र वर्मा, पृ.274

[11] हिन्दी साहित्य : सामाजिक चेतना, डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, पृ. 155–156

[12] नागार्जुन की सामाजिक चेतना, प्रो. प्रणय, पृ. 30

[13] नागार्जुन की सामाजिक चेतना, प्रो. प्रणय, पृ. 30

[14] हिन्दी उपन्यासः सामाजिक चेतना, डॉ. कुंवरपाल सिहं, पृ. 39

लेखक

(डॉ. नीलम)

195–सी, सैक्टर–12,
पंचकुला